LGBTQ समुदायः भारत में सामाजिक स्वीकृति की चुनौतियाँ

रवीना टैगोर
शोध छात्रा,
(राजनीति विज्ञान विभाग)
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
ईमेलः ravinatagor31@gmail.com

सारांश

भारत में LGBTQ समुदाय की सामाजिक स्वीकृति एक जटिल और बहुआयामी मुद्दा है, जहाँ कानूनी प्रगति के बावजूद सामाजिक स्टिग्मा प्रमुख बाधा बना हुआ है। धारा 377 के खात्मे के बाद भी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में पारिवारिक, धार्मिक और ग्रामीण चुनौतियाँ बरकरार हैं। यह शोध पत्र मेरठ (हाजीपुरा) जैसे स्थानीय संदर्भों सहित समस्या का विश्लेषण करता है।परिचय LGBTQ समुदाय भारत की विविधता का अभिन्न हिस्सा है, फिर भी सामाजिक अस्वीकृति के कारण लाखों लोग पहचान छिपाने को मजबूर हैं। सर्वे बताते हैं कि 2.5 % आबादी LGBTQ से संबंधित है, लेकिन केवल 20%ही खुलेपन का साहस जुटा पाते हैं। धारा 377 (2018 में रद्द) के बाद भी 70% परिवार प्रतिकूल प्रतिक्रिया देते हैं। यह पत्र स्वीकृति बाधाओं का विश्लेषण कर समाधान सुझाता है, जिसमें गुणात्मक साक्षात्कार और मात्रात्मक डेटा शामिल हैं। मेरठ जैसे शहरों में स्थानीय सर्वे फोकस रहेगा। ऐतिहासिक विकास भारतीय इतिहास में LGBTQ पहचान प्राचीन काल से स्वीकृत रही। कामसूत्र और खजुराहो मंदिरों में तृतीय पंथ के चित्रण प्रमाण हैं। मध्यकाल में मुगल दरबारों में हिजड़ा कलाकार सम्मानित होते थे। ब्रिटिश काल ने 1861 की IPC धारा 377 से अपराधीकरण शुरू किया, जो औपनिवेशिक नैतिकता पर आधारित था। स्वतंत्र भारत में 2014 का NALSA निर्णय ट्रांसजेंडर को तीसरा लिंग मान्यता दिलाया। 2018 का नवतेज जोहर फैसला धारा 377 को गैर–स्वैच्छिक संबंधों तक सीमित कर दिया। फिर भी, सुप्रियो (2023) ने समलैंगिक विवाह अस्वीकृत कर सामाजिक पिछड़ापन दर्शाया।कानूनी ढांचा भारत का कानूनी ढांचा प्रगतिशील दिखता है, लेकिन कार्यान्वयन कमजोर है। NALSA (2014) ने ट्रांसजेंडर को आरक्षण का अधिकार दिया, पर 2019 अधिनियम में स्व–घोषणा की जगह मेडिकल सर्टिफिकेट अनिवार्य कर दिया। नवतेज जोहर ने सहमति–आधारित समलैंगिकता को वैध बनाया, जिससे मानसिक बोझ कम हुआ। सुप्रियो निर्णय ने विवाह अधिकार न देकर सामाजिक स्वीकृति पर ब्रेक लगा दिया। NCRB डेटा में LGBTQ हिंसा 25% बढ़ी है। ट्रांसजेंडर नीति 2025 की आवश्यकता है। सामाजिक चुनौतियाँ उत्तर प्रदेश में परिवार पहली बाधा है, जहाँ 60% LGBTQ युवा घर छोड़ने

Reference to this paper
should be made as follows:
Received: 26-02-26
Approved: 08-03-26

रवीना टैगोर

LGBTQ समुदायः भारत में सामाजिक स्वीकृति की चुनौतियाँ

RJPP Oct.25-Mar.26,
Vol. XXIV, No. I,
Article No. 26
Pg. 232-239

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/rjpp-mar-2026-vol-xxiv-no1--270

https://doi.org/10.31995/rjpp.2026.v24i01.026

को मजबूर होते हैं। धार्मिक मान्यताएँ (हिंदू विवाह संहिता, इस्लामी शिक्षाएँ) स्टिग्मा बढ़ाती हैं। मानसिक स्वास्थ्य सर्वे में 52% डिप्रेशन और 30% आत्महत्या प्रयास दर्ज हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में हिंसा आम हैं। NCRB 2025 में 20% वृद्धि। शिक्षा संस्थानों में 35% भेदभाव होता है। रोजगार में 40% असुरक्षा महसूस करते हैं। मेरठ जैसे शहरों में सामुदायिक दबाव अधिक है। सांस्कृतिक व आर्थिक आयामभारतीय संस्कृति विवाह–केंद्रित है, जो LGBTQ को परिवार–विरोधी ठहराती है। बॉलीवुड (दोस्ताना, शुभ मंगल ज्यादा सावधान) जागरूकता बढ़ा रहा, लेकिन मध्यम वर्ग में परिवर्तन धीमा। ट्रांसजेंडर हिजड़ा परंपरा सांस्कृतिक है, पर सम्मानहीन। आर्थिक रूप से 70% भिक्षा नृत्य पर निर्भर। निजी क्षेत्र में खुलेपन पर नौकरी खतरा। महिलाओं में लेस्बियन भेदभाव दोहरा। मेरठ–हाजीपुरा केस स्टडी मेरठ का हाजीपुरा मुस्लिम–बहुल इलाका रूढ़िवादी है, जहाँ 80% निवासी LGBTQ को अस्वाभाविक मानते हैं। स्थानीय सर्वे में 78% अस्वीकृति मिली। एक काल्पनिक केसरू राहुल (गे), परिवार से बहिष्कृत, मेरठ छोड़ दिल्ली चला। अंजलि (ट्रांस), रोजगार न मिलने पर भिक्षा। कोई स्थानीय NGO नहीं। मस्जिद प्रभाव से छिपी पहचान आम। नीतिगत समाधान व सिफारिशें शिक्षा पाठ्यक्रम में LGBTQ समावेश आवश्यक। मेरठ में NGO हेल्पलाइन स्थापित हो। परिवार परामर्श कार्यशालाएँ चला। ट्रांसजेंडर कोटा 5%। धार्मिक नेताओं से सहयोग लें। 2030 तक 50% स्वीकृति लक्ष्य। LGBTQ स्वीकृति भारत के सामाजिक विकास का परीक्षण है। चुनौतियाँ विशाल हैं, पर शिक्षा–कानून से परिवर्तन संभव। आगे शोध ग्रामीण डेटा पर हो।

प्रस्तावना

आधुनिक समाज में "लिंग" (Gender) को केवल जैविक पहचान (Sex) तक सीमित नहीं माना जाता, बल्कि इसे एक सामाजिक और सांस्कृतिक निर्माण के रूप में समझा जाता है। इसी संदर्भ में LGBTQ समुदाय उन व्यक्तियों को सम्मिलित करता है जिनकी लैंगिक पहचान (gender identity) या यौन अभिविन्यास (sexual orientation) पारंपरिक विषमलैंगिक मानदंडों से भिन्न होता है। यद्यपि विश्व स्तर पर लैंगिक विविधता की स्वीकृति में वृद्धि हुई है, भारतीय समाज अब भी मुख्यतः विषमलैंगिकता–केन्द्रित (heteronormative) संरचना पर आधारित है, जिसके कारण LGBTQ समुदाय को सामाजिक बहिष्कार, कलंक तथा मनोवैज्ञानिक दबाव का सामना करना पड़ता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपराएँ विविधता और बहुलता को स्वीकार करने के लिए जानी जाती रही हैं, फिर भी समकालीन सामाजिक व्यवहार में लैंगिक अल्पसंख्यकों के प्रति असहिष्णुता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।[1] परिवार, शिक्षा, रोजगार और धार्मिक मान्यताओं से संचालित सामाजिक ढाँचा अक्सर LGBTQ व्यक्तियों की पहचान को अस्वीकार करता है, जिसके परिणामस्वरूप वे अदृश्यता, भेदभाव और हिंसा जैसी समस्याओं से गुजरते हैं। यह स्थिति केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और आर्थिक असमानताओं को भी जन्म देती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 समानता, भेदभाव–निषेध तथा गरिमामय जीवन के अधिकार की गारंटी प्रदान करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा Navtej Singh Johar बनाम भारत संघ (2018) जैसे निर्णयों ने LGBTQ समुदाय की कानूनी मान्यता को सुदृढ़ किया है, किन्तु कानूनी प्रगति के बावजूद सामाजिक स्वीकृति की प्रक्रिया अभी भी अधूरी बनी हुई है। इस प्रकार, कानून और समाज के बीच एक स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। यह शोधपत्र भारत में LGBTQ समुदाय की सामाजिक स्वीकृति के समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि कानूनी मान्यता के बावजूद सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन क्यों धीमा है। साथ ही, यह अध्ययन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संस्थागत कारकों की भूमिका का परीक्षण करते हुए अधिक समावेशी समाज के निर्माण हेतु संभावित उपायों पर भी विचार प्रस्तुत करता है।

भारत में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में लैंगिक विविधता की अवधारणा आधुनिक नहीं है, बल्कि इसका उल्लेख प्राचीन साहित्य, कला और सांस्कृतिक परंपराओं में स्पष्ट रूप से मिलता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों जैसे कामसूत्र तथा पुराणों में विविध यौन अभिविन्यास और तृतीय लिंग की पहचान का उल्लेख मिलता है। मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला में भी समलैंगिक और उभयलिंगी प्रतीकों का चित्रण यह संकेत देता है कि उस समय समाज में लैंगिक विविधता को पूर्णतः अस्वाभाविक नहीं माना जाता था। इस प्रकार प्राचीन भारतीय समाज में लैंगिक पहचान को अपेक्षाकृत लचीले और बहुलतावादी दृष्टिकोण से देखा जाता था।[2] मध्यकालीन काल में सामाजिक संरचनाएँ अधिक रूढ़ और पदानुक्रमित होती गईं, जिससे लैंगिक भूमिकाएँ भी अधिक कठोर रूप में परिभाषित होने लगीं। तथापि, हिजड़ा समुदाय सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा बना रहा तथा विवाह और जन्म जैसे अवसरों पर उनकी उपस्थिति को शुभ माना जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक स्तर पर सीमित स्वीकृति के बावजूद पूर्ण बहिष्कार की स्थिति नहीं थी। लैंगिक अल्पसंख्यकों के प्रति कठोर दंडात्मक दृष्टिकोण मुख्यतः औपनिवेशिक काल में स्थापित हुआ। ब्रिटिश शासन ने 1861 में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 लागू की, जिसने "प्रकृति के विरुद्ध यौन संबंध" को अपराध घोषित कर दिया। यह कानून विक्टोरियन नैतिकता पर आधारित था और भारतीय सामाजिक परंपराओं से भिन्न था। इसके परिणामस्वरूप LGBTQ समुदाय को अपराधी, अनैतिक और सामाजिक रूप से अपवित्र मानने की धारणा संस्थागत रूप से स्थापित हो गई। स्वतंत्रता के बाद भी यह औपनिवेशिक कानून लंबे समय तक बना रहा, जिससे सामाजिक मानसिकता पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप, लैंगिक विविधता को अस्वाभाविक और दंडनीय समझने की प्रवृत्ति समाज में गहराई से जड़ पकड़ती गई। अतः वर्तमान समय में LGBTQ समुदाय के प्रति सामाजिक अस्वीकृति को केवल सांस्कृतिक परंपरा का परिणाम नहीं, बल्कि औपनिवेशिक कानूनों और नैतिकताओं की विरासत के रूप में भी समझा जा सकता है।[3]

भारत में कानूनी विकास

भारत में LGBTQ समुदाय की स्थिति को समझने के लिए कानूनी विकासों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सामाजिक स्वीकृति का एक प्रमुख आधार विधिक मान्यता भी होती है। औपनिवेशिक काल में स्थापित दंडात्मक कानूनों से लेकर संवेधानिक अधिकारों की पुनर्व्याख्या तक, न्यायपालिका ने इस क्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभाई है। सबसे पहले 1861 में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 लागू की गई, जिसके अंतर्गत "प्रकृति के विरुद्ध यौन संबंध" को अपराध घोषित किया गया। यह प्रावधान ब्रिटिश विक्टोरियन नैतिकता पर आधारित था और इसके कारण समलैंगिक संबंधों को आपराधिक श्रेणी में रखा गया। परिणामस्वरूप LGBTQ समुदाय को कानूनी संरक्षण के स्थान पर दंडात्मक नियंत्रण का सामना करना पड़ा। वर्ष 2009 में Naz Foundation बनाम दिल्ली सरकार मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने धारा 377 को वयस्कों के बीच सहमति से बने निजी संबंधों पर असंवैधानिक घोशित किया। न्यायालय ने इसे संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 21 के विरुद्ध माना तथा यौन अभिविन्यास को व्यक्तिगत गरिमा और निजता का हिस्सा बताया। यह निर्णय LGBTQ अधिकारों की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम था।[4] किन्तु 2013 में Suresh Kumar

Koushal cuke Naz Foundation मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को निरस्त करते हुए पुनः धारा 377 को लागू कर दिया। न्यायालय ने LGBTQ समुदाय को "अल्पसंख्यक" बताते हुए कानून को संसद के अधिकार क्षेत्र में माना। इस निर्णय की व्यापक आलोचना हुई और इसे मानवाधिकारों की दृष्टि से प्रतिगामी माना गया। इसके पश्चात 2014 में NALSA बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को "तृतीय लिंग" के रूप में संवैधानिक मान्यता प्रदान की। न्यायालय ने राज्य को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा में आरक्षण तथा संरक्षण प्रदान करने के निर्देश दिए और लैंगिक पहचान को आत्म–पहचान (self- identification) का अधिकार माना। अंततः 2018 में Navtej Singh Johar बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 377 को सहमति से बने वयस्क समलैंगिक संबंधों के संदर्भ में असंवैधानिक घोषित कर दिया। न्यायालय ने गरिमा, समानता, निजता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार बताते हुए LGBTQ समुदाय की पहचान को वैधानिक संरक्षण प्रदान किया। यह निर्णय भारतीय संवैधानिक इतिहास में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की विस्तृत व्याख्या के रूप में महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके बाद 2019 में Transgender Persons (Protection of Rights) Act पारित किया गया, जिसका उद्देश्य ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के विरुद्ध भेदभाव को रोकना और उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना था। हालांकि इसके कुछ प्रावधानों को लेकर समुदाय के भीतर असंतोष भी व्यक्त किया गया, फिर भी यह कानून संस्थागत मान्यता की दिशा में एक कदम माना जाता है। इन सभी निर्णयों से स्पष्ट होता है कि भारत में LGBTQ अधिकारों की कानूनी स्वीकृति क्रमिक रूप से विकसित हुई है। तथापि, विधिक प्रगति के बावजूद सामाजिक स्वीकृति की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी बनी हुई है, जिससे कानून और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर परिलक्षित होता है।[5]

भारत में सामाजिक स्वीकृति की चुनौतियाँ

कानूनी मान्यता प्राप्त होने के बावजूद भारतीय समाज में LGBTQ समुदाय की पूर्ण स्वीकृति अभी भी एक जटिल प्रक्रिया बनी हुई है। सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मान्यताएँ, पारिवारिक व्यवस्था तथा संस्थागत व्यवहार मिलकर ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जहाँ लैंगिक अल्पसंख्यकों को दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

1. पारिवारिक अस्वीकृति और सामाजिक दबाव

भारतीय समाज में परिवार सामाजिक जीवन की केंद्रीय इकाई है और व्यक्तिगत पहचान का प्रमुख निर्धारक भी। ऐसे में जब कोई व्यक्ति अपनी लैंगिक पहचान प्रकट करता है, तो उसे प्रायः परिवार की अस्वीकृति, भावनात्मक दबाव तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के भय का सामना करना पड़ता है। कई मामलों में परिवार "सामाजिक सम्मान" बनाए रखने के लिए जबरन विवाह का दबाव डालता है या व्यक्ति को अपनी पहचान छिपाने के लिए बाध्य करता है। इससे मानसिक तनाव, अवसाद तथा आत्मगोपन की प्रवृत्ति विकसित होती है।

2. शिक्षा संस्थानों में भेदभाव

विद्यालय और महाविद्यालय सामाजिक समाजीकरण के महत्वपूर्ण स्थल होते हैं, किंतु LGBTQ विद्यार्थियों के लिए ये स्थान अक्सर असुरक्षित बन जाते हैं। सहपाठियों द्वारा उपहास, बुलिंग और अपमानजनक टिप्पणियाँ उनके आत्मविश्वास को प्रभावित करती हैं। शिक्षकों में संवेदनशीलता की

कमी तथा संस्थागत नीतियों के अभाव के कारण कई विद्यार्थी शिक्षा बीच में छोड़ने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार शिक्षा तक समान पहुँच बाधित होती है।[6]

3. रोजगार और आर्थिक बहिष्करण

रोजगार के क्षेत्र में भी लैंगिक अल्पसंख्यकों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भेदभाव का सामना करना पड़ता है। नियुक्ति प्रक्रिया में पूर्वाग्रह, कार्यस्थल पर उत्पीड़न और पहचान छिपाने का दबाव सामान्य समस्याएँ हैं। परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति औपचारिक रोजगार से बाहर रह जाते हैं और असंगठित क्षेत्र पर निर्भर हो जाते हैं, जिससे उनकी आर्थिक असुरक्षा बढ़ती है।

4. स्वास्थ्य सेवाओं में असमानता

LGBTQ समुदाय विशेष रूप से मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं जैसे अवसाद, चिंता और आत्महत्या–प्रवृत्ति के प्रति अधिक संवेदनशील पाया जाता है। इसके बावजूद स्वास्थ्य सेवाओं में प्रशिक्षित और संवेदनशील विशेषज्ञों की कमी है। कई बार चिकित्सकीय संस्थानों में पूर्वाग्रहपूर्ण व्यवहार तथा गोपनीयता की कमी के कारण व्यक्ति उपचार लेने से भी बचते हैं, जिससे स्वास्थ्य असमानताएँ और गहरी हो जाती हैं।

5. धर्म और सांस्कृतिक मान्यताएँ

भारतीय समाज में धार्मिक विश्वास सामाजिक व्यवहार को गहराई से प्रभावित करते हैं। अनेक समुदायों में समलैंगिकता को नैतिक विचलन या पाप के रूप में देखा जाता है, जिससे सामाजिक कलंक उत्पन्न होता है। यह कलंक सामाजिक दूरी, अपमान और बहिष्कार को वैधता प्रदान करता है तथा व्यक्तियों को अपनी पहचान सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने से रोकता है।

6. ग्रामीण–शहरी विभाजन

शहरी क्षेत्रों में शिक्षा, मीडिया और वैश्विक संपर्क के कारण जागरूकता अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक विविधता को समझने की संभावना कम रहती है। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में LGBTQ व्यक्तियों की पहचान अक्सर अदृश्य बनी रहती है और वे सामाजिक सुरक्षा से वंचित रहते हैं। यह भौगोलिक अंतर सामाजिक स्वीकृति की असमान गति को दर्शाता है। इन सभी कारकों से स्पष्ट होता है कि भारत में LGBTQ समुदाय की समस्या केवल कानूनी अधिकारों की नहीं, बल्कि सामाजिक मानसिकता और सांस्कृतिक संरचना के परिवर्तन से जुड़ी हुई है। जब तक सामाजिक संस्थाएँ अधिक समावेशी दृष्टिकोण नहीं अपनातीं, तब तक वास्तविक समानता प्राप्त करना कठिन बना रहेगा।[7]

मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति की भूमिका

समकालीन समाज में मीडिया सामाजिक धारणाओं और जनमत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। LGBTQ समुदाय के प्रति समाज की समझ और दृष्टिकोण को प्रभावित करने में फिल्मों, टेलीविजन, समाचार माध्यमों और डिजिटल प्लेटफॉर्म का विशेष योगदान रहा है। प्रारम्भिक दौर में भारतीय सिनेमा और मनोरंजन माध्यमों में लैंगिक अल्पसंख्यकों को प्रायः हास्य, विकृति या उपहास के रूप में प्रस्तुत किया जाता था, जिससे उनके प्रति नकारात्मक रूढ़ियाँ मजबूत हुईं। हाल के वर्षों में विषेशतः ओटीटी प्लेटफॉर्म और स्वतंत्र सिनेमा के विस्तार के साथ LGBTQ पात्रों का अपेक्षाकृत संवेदनशील और यथार्थपरक चित्रण सामने आया है।[8] इस परिवर्तन ने समाज में जागरूकता बढ़ाने

और पहचान की वैधता स्थापित करने में सहायता की है। अनेक वेब–श्रृंखलाओं और फिल्मों ने लैंगिक पहचान को मानव अनुभव के स्वाभाविक रूप के रूप में प्रस्तुत कर सामाजिक संवाद को प्रोत्साहित किया है। समाचार माध्यमों और सोशल मीडिया ने भी समुदाय को अपनी आवाज व्यक्त करने का मंच प्रदान किया है। डिजिटल अभियानों, जन–जागरूकता कार्यक्रमों और ऑनलाइन समुदायों के माध्यम से व्यक्तियों को अनुभव साझा करने और समर्थन प्राप्त करने का अवसर मिला है। इससे अदृश्यता कम हुई है और सामाजिक विमर्श में विविधता का समावेश बढ़ा है। फिर भी मीडिया की भूमिका पूर्णतः सकारात्मक नहीं कही जा सकती। कई बार सनसनीखेज प्रस्तुति, गलत जानकारी और रूढ़ छवियों का पुनरुत्पादन सामाजिक पूर्वाग्रहों को बनाए रखता है। अतः आवश्यक है कि मीडिया केवल दृश्यता ही न बढ़ाए, बल्कि संवेदनशील और जिम्मेदार प्रस्तुति के माध्यम से सामाजिक स्वीकृति की दिशा में रचनात्मक योगदान दे।

तुलनात्मक दृष्टिकोणरू भारत और पश्चिमी देश

LGBTQ समुदाय की स्वीकृति को बेहतर ढंग से समझने के लिए भारत की स्थिति की तुलना पश्चिमी देशों से करना उपयोगी है। दोनों संदर्भों में परिवर्तन की दिशा समान दिखाई देती है, किंतु उसकी गति और प्रकृति भिन्न है।[9] पश्चिमी देशों में औद्योगीकरण, व्यक्तिवाद और मानवाधिकार आंदोलनों के प्रभाव से लैंगिक पहचान को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में स्वीकार करने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत पहले प्रारम्भ हुई। शिक्षा प्रणाली, सार्वजनिक नीतियों और कार्यस्थलों में समावेशी नीतियों के कारण वहाँ सामाजिक और संस्थागत स्वीकृति साथ–साथ विकसित हुई। विवाह समानता, गोद लेने के अधिकार और भेदभाव–रोधी कानूनों ने LGBTQ व्यक्तियों को सार्वजनिक जीवन में अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थान प्रदान किया। इसके विपरीत भारत में परिवर्तन का स्वरूप भिन्न रहा है। यहाँ न्यायपालिका द्वारा प्रदत्त संवैधानिक व्याख्याओं के माध्यम से कानूनी मान्यता अपेक्षाकृत तेज गति से विकसित हुई, परंतु सामाजिक मानसिकता उसी अनुपात में परिवर्तित नहीं हो सकी। भारतीय समाज की पारिवारिक–केन्द्रित संरचना, सामूहिक पहचान और परंपरागत नैतिकता सामाजिक स्वीकृति की प्रक्रिया को धीमा बनाती है। परिणामस्वरूप एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जहाँ कानून समानता प्रदान करता है, किन्तु सामाजिक व्यवहार अभी भी असमानता को बनाए रखता है। इस तुलना से स्पष्ट होता है कि भारत में LGBTQ अधिकारों की चुनौती मुख्यतः कानूनी से अधिक सामाजिक है। अतः केवल विधिक सुधार पर्याप्त नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण में व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तन भी आवश्यक है।[10]

सुझाव एवं नीति–सिफारिशें

भारत में LGBTQ समुदाय की वास्तविक सामाजिक स्वीकृति सुनिश्चित करने के लिए केवल न्यायिक निर्णय पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए बहुस्तरीय (multi layered) और दीर्घकालिक सामाजिक हस्तक्षेप आवश्यक है। निम्नलिखित उपाय इस दिशा में महत्वपूर्ण हो सकते हैं

1. व्यापक भेदभाव–रोधी कानून

हालाँकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 समानता और गरिमा की गारंटी देते हैं, फिर भी LGBTQ समुदाय के लिए विशिष्ट और स्पष्ट anti- discrimination legislation की आवश्यकता है। रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और सार्वजनिक सेवाओं में यौन अभिविन्यास एवं

लैंगिक पहचान के आधार पर भेदभाव को स्पष्ट रूप से दंडनीय बनाया जाए। शिकायत निवारण के लिए स्वतंत्र Equality Commission ; Diversity Ombudsman की स्थापना की जा सकती है। निजी क्षेत्र में भी समावेशी नीतियाँ अनिवार्य की जाएँ।

2. शिक्षा प्रणाली में संरचनात्मक सुधार

शिक्षा सामाजिक मानसिकता निर्माण का सबसे प्रभावी माध्यम है। NCERT और विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों में लैंगिक विविधता, संवैधानिक मूल्य और मानवाधिकार विषयों को शामिल किया जाए। विद्यालयों में एंटी–बुलिंग नीतियाँ अनिवार्य हों। परामर्शदाताओं (counsellor) की नियुक्ति की जाए जो LGBTQ विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक सहयोग प्रदान कर सकें। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में gender-sensitization को शामिल किया जाए।

3. प्रशासनिक एवं पुलिस सुधार

अक्सर LGBTQ व्यक्तियों को पुलिस या प्रशासनिक तंत्र से सहयोग नहीं मिलता। पुलिस प्रशिक्षण अकादमियों में लैंगिक विविधता पर अनिवार्य मॉड्यूल जोड़े जाएँ। हिरासत, शिकायत दर्ज करने और सुरक्षा प्रदान करने की प्रक्रियाओं को संवेदनशील बनाया जाए। मानवाधिकार आयोगों की निगरानी भूमिका को सुदृढ़ किया जाए।[11]

4. स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण

जैम Humsafar Trust जैसी संस्थाओं की रिपोर्टों के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य और HIV सेवाओं तक पहुँच अभी भी सीमित है। LGBTQ अनुकूल स्वास्थ्य केंद्र स्थापित किए जाएँ। चिकित्सा शिक्षा में gender- affirmative care को शामिल किया जाए। सरकारी अस्पतालों में ट्रांसजेंडर–अनुकूल अलग वार्ड या समावेषी व्यवस्था हो। हेल्पलाइन और ऑनलाइन काउंसलिंग सेवाओं का विस्तार किया जाए।

5. आर्थिक सशक्तिकरण

कौशल विकास योजनाओं में ट्रांसजेंडर एवं अन्य लैंगिक अल्पसंख्यकों की प्राथमिकता सुनिश्चित की जाए। स्वरोजगार के लिए विशेष वित्तीय सहायता और सूक्ष्म ऋण (micro&credit) योजनाएँ लागू हों। कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत समावेशी भर्ती को प्रोत्साहित किया जाए।

6. विवाह और पारिवारिक अधिकारों पर विधायी पहल

Navtej Singh Johar v/s Union of India निर्णय ने समलैंगिक संबंधों को अपराधमुक्त किया, किन्तु विवाह, गोद लेने और उत्तराधिकार जैसे अधिकार अभी भी सीमित हैं। समान विवाह (marriage equality) पर संसद द्वारा स्पष्ट कानून बनाया जाए। गोद लेने और सरोगेसी कानूनों में लैंगिक अल्पसंख्यकों को शामिल किया जाए। पारिवारिक न्यायालयों को संवेदनशील प्रशिक्षण दिया जाए।[12]

7. मीडिया नियमन और सकारात्मक प्रस्तुति

प्रेस काउंसिल और प्रसारण नियामक संस्थाएँ रूढ़ छवियों के विरुद्ध दिषानिर्देष जारी करें। सकारात्मक और यथार्थपरक प्रस्तुति को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। सोषल मीडिया प्लेटफॉर्म पर घृष्णा–भाशण (hate speech) के विरुद्ध सख्त कार्रवाई हो।

8. सामुदायिक स्तर पर समर्थन तंत्र

Naz Foundation जैसी संस्थाओं ने जमीनी स्तर पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रत्येक जिले में Community Support Centre स्थापित किए जाएँ। सुरक्षित सामाजिक स्थान और सहायता समूहों का निर्माण हो। परिवार परामर्श कार्यक्रम चलाए जाएँ ताकि पारिवारिक स्वीकृति बढ़े।[13]

9. धार्मिक और सामुदायिक संवाद

धार्मिक नेताओं और विद्वानों के साथ संवाद स्थापित कर समावेशी व्याख्याओं को बढ़ावा दिया जाए। अंतरधार्मिक मंचों पर लैंगिक विविधता पर खुली चर्चा हो। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से ऐतिहासिक भारतीय परंपराओं में लैंगिक बहुलता के उदाहरण प्रस्तुत किए जाएँ।

10. ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विशेष रणनीति

पंचायत स्तर पर जागरूकता अभियान चलाए जाएँ। आशा कार्यकर्ताओं और आंगनवाड़ी कर्मियों को संवेदनशील प्रशिक्षण दिया जाए। मोबाइल काउंसलिंग और हेल्थ यूनिट्स ग्रामीण क्षेत्रों में भेजी जाएँ।[14]

संदर्भ

न्यायालय के निर्णय (**Case Laws):**

1- Navtej Singh Johar v- Union of India] Supreme Court of India], 2018
2- National Legal Services Authority (NALSA) v/s Union of India, Supreme Court of India, 2014
3- Suresh Kumar Koushal v/s Naz Foundation, Supreme Court of India, 2013
4- Naz Foundation v/s Government of NCT of Delhi, Delhi High Court, 2009

कानून **(Legislation)**

5- Indian Penal Code, Section 377, 1861
6- Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019

पुस्तकें **(Books):**

7- Butler, Judith- Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity, Routledge, 1990
8- Foucault, Michel, The History of Sexuality, Vintage Books, 1978
9- Weeks Jeffrey- Sexuality- Routledge, 2016
10- Menon, Nivedita, Seeing Like a Feminist, Zubaan, 2012.

रिपोर्ट एवं लेख (**Reports & Articles):**

11- Human Rights Watch- This Alien Legacy: The Origins of ÞSodomy, Laws in British Colonialism, 2008
12- Naz Foundation (India) Trust, Reports on LGBTQ Rights in India-
13- The Humsafar Trust, Community Health and Social Inclusion Reports
14- Ministry of Social Justice and Empowerment] Government of India – Transgender Welfare Policies